THE TIMES OF INDIA

Date:28-10-22

Keen As Mustard

GM crops need quick regulatory okays, Indian farming & Indian science will hugely benefit.

TOI Editorials

India's GM crops regulator, GEAC, recently approved the environmental release of GM mustard for seed production and testing. If things go well, commercial use of mustard seeds should fructify in two years. It's a much delayed and hugely positive development. Mustard, if the trials work, will be only the second GM crop in commercial production after Bt-cotton. GEAC had cleared GM mustard in 2017 but GoI asked for more studies. There are a couple of reasons why GM mustard this time stands a better chance of gaining final approval.

India imports about 60% of its edible oil – $19 billion worth last financial year. This level of import dependency undermines food security. For years, Indians have been consuming GM soybean oil as imports are sourced mostly from countries that depend on the genetically modified crop. Given these factors, mustard offers a solution if India's average yield, about one half to a third of the global average, improves.

Of course, GM mustard has again evoked vocal opposition from Swadeshi Jagran Manch and some farmers. Their apprehensions are misplaced. Safety assessment methods for GM crops tend to converge globally. GoI representatives told a parliamentary committee in 2017 that Indian regulators had assessed Bt-cotton, Bt-brinjal and GM mustard, and found them to be safe as feed to animals. The fact is agriculture needs to be far more productive if farmers are to see a sustained rise in income. ICAR conducted a study on the impact of Bt-cotton in Maharashtra between 2012 and 2015. It found that the average seed cotton yield increased after the adoption of GM technology. Remember, too, GM mustard is the outcome of publicly funded R&D. It's not just farmers, Indian scientists too will get a boost if it delivers.

THE HINDU

Date:28-10-22

Limits of pleasure

Governor Khan should not conflate role as Chancellor with his constitutional duties.

Editorial

Kerala Governor Arif Mohammed Khan has declared that he is withdrawing his pleasure as far as Finance Minister K.N. Balagopal is concerned. He expects constitutionally appropriate action by Chief Minister Pinarayi Vijayan. In other words, Mr. Khan wants Mr. Balagopal dismissed for remarks that he sees as seditious, undermining national unity and stoking regionalism. However, Mr. Vijayan has rejected the demand. It is difficult to agree with the Governor's assessment that an observation that those who had seen only universities in Uttar Pradesh would not understand universities in Kerala is seditious or goes against national unity. In normal circumstances, when the Governor conveys his displeasure with a Minister's conduct, it will have considerable persuasive value. However, in the backdrop of the unrelenting acrimony between Raj Bhavan and the Cabinet, it may have not evoked any serious response. Needless to say, the polite phrase in the Constitution that applies the doctrine of pleasure to a Minister's tenure is nothing more than a reference to the will of the Chief Minister on the continuance or dismissal of a member of his ministerial Council.

This constitutional position, however, does not mean that the underlying controversy over the appointment of Vice-Chancellors to universities in Kerala can be brushed aside. After the Supreme Court set aside the appointment made in the A.P.J. Abdul Kalam Technological University, Thiruvananthapuram, Mr. Khan directed nine other V-Cs to resign, flagging what he felt were similar legal infirmities in their appointment. His point was that just as it was in the case before the apex court, these V-Cs too were either appointed by the submission of a single name by Search Committees (instead of a panel of three to five names, as required under University Grants Commission regulations), or were chosen by committees that included the State's Chief Secretary. The Governor/Chancellor was obviously wrong in fixing a short deadline for their resignation, and he subsequently converted the communication into show-cause notices to them, asking them to explain why their appointments should not be deemed illegal. It is a separate legal question whether the judgment in the case of one V-C is automatically applicable to all others. However, given its potential for litigation, the sooner the university statutes in Kerala are brought in line with the UGC regulations, the better. However, there is no doubt that Governor-Chancellors should not conflate their statutory powers to handle university matters with their constitutional role in Raj Bhavan. The tussle makes a good case for why Governors, whose overtly political functioning is an uneasy fact of political life, should not be tasked with being Chancellors.

दैनिक भास्कर

Date:28-10-22

पर्यावरण शिखर सम्मेलन से ठोस समाधान निकालें

संपादकीय

अगले महीने 7 से 18 नवंबर के बीच मिस्र में पर्यावरण शिखर सम्मेलन (सीओपी-27) होने जा रहा है। इसमें दुनिया के देश पर्यावरण पर बढ़ते खतरे से उबरने के लिए तात्कालिक और दीर्घकालिक फैसले लेंगे। इस बीच प्रदषण के कारण बढते वायमंडलीय तापमान से मानव, पशु और पेड़-पौधों पर आसन्न खतरे को लेकर एक ताजा रिपोर्ट जारी हुई है। दक्षिण एशियाई देश खासकर भारत जैसे विकासशील देश वायुमंडल में बढ़ते तापमान की चपेट आ चुके हैं। इसके शिकार ज्यादातर गरीब तबके के लोग होते हैं। रिपोर्ट कहती है कि नई बीमारियां हमला करेंगी। मक्के और गेहूं के उत्पादन पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। रिपोर्ट में भारत का उदाहरण देते हुए बताया गया है कि वर्ष 2000-04 और 2017-21 के बीच गर्मी के दुष्प्रभावों से मरने वालों की संख्या 55% बढ़ी। डेंगू का बारबार हमला भी तापमान वृद्धि के कारण है। हालांकि कई देशों ने हीट एक्शन प्लान बड़े पैमाने पर शुरू किया है। भारत में भी अहमदाबाद के अलावा कुछ अन्य शहरी निकाय इसकी योजना बना रहे हैं। ऐसे संकेत हैं कि लांसेट की यह रिपोर्ट सीओपी-27 में चर्चा का प्रमुख बिंदु होगी। ऊर्जा के लिए फॉसिल फ्यूल (जीवाश्म ईंधन) जैसे कोयला, पेट्रोलियम, नेचरल गैस का प्रयोग प्रदूषण के मुख्य दोषी हैं।

जनसत्ता

Date:28-10-22

कुदरत से खिलवाड़ के खतरे

ऋतुपर्ण दवे

क्या बदलते, बेकाबू होते और छिन-पल बिगड़ते मौसम के लिए वे शोध और प्रयोग भी जिम्मेदार हैं, जिन्हें वैज्ञानिक तो कहा जा सकता है, लेकिन कुदरत के अनुकूल कतई नहीं। यह सवाल काफी हद तक चिंतित करता है और विश्वास करने पर मजबूर भी। सबसे गहरा सवालिया निशान चीन पर है, जिसने बीते दस वर्षों में मौसम में अपने अनुकूल सुधार के लिए लगभग पचास लाख प्रयोग कर डाले और अथाह पैसा बहाया। इसे लेकर चीन पर कई आरोप भी लगे। इसी जुलाई और अगस्त में चौंसठ दिनों तक चीन में जबर्दस्त लू चली, काफी गर्मी पड़ी। कई इलाकों का तापमान चालीस डिग्री को पार कर गया। बड़ी-बड़ी नदियां और दूसरे जलस्रोत सूखने लगे। फसलों को बचाने के लिए चीन ने बड़े पैमाने पर 'क्लाउड सीडिंग' तकनीक अपनाई और बारिश कराई। दूसरे कई देश भी कभी प्रयोग, तो कभी जरूरत के लिए थोड़ा-बहुत इस तकनीक को अपनाते रहे हैं। तरीका वैज्ञानिक जरूर है, लेकिन प्रकृति-विरोधी है।

जुलाई का महीना यों तो संयुक्त अरब अमीरात के लिए सूखा और गर्म होता है, लेकिन अबकी बार एक ही दिन में इतनी भयंकर बारिश हुई कि जितनी वहां पूरे साल में नहीं होती। इसमें आधा दर्जन से ज्यादा लोगों की जान चली गई। वहां भी जबसे कृत्रिम तरीके आजमाए जाने लगे हैं, तभी से ऐसा होने लगा है। कमोबेश यही स्थिति पिछले साल गर्मियों के दौरान जर्मनी और बेल्जियम में दिखी। वहां जबर्दस्त बाढ़ आई। मौसम के बिगड़ते रूप को सिर्फ तापमान से नहीं जोड़ सकते, क्योंकि सर्दी, गर्मी, बर्फबारी, बेमौसम बारिश और बाढ़ की तबाही के तमाम मंजर सामने हैं।

इधर भारत में अक्तूबर माह में लौटते मानसून के साथ आधे से ज्यादा देश में बाढ़, बारिश से तबाही का वह रूप दिखा जो अमूमन नहीं दिखता। देखना होगा कि क्यों पुणे में अक्तूबर के तीसरे हफ्ते में बारिश का एक सौ चालीस सालों का रिकार्ड टूटा? वहीं महाराष्ट्र के कई इलाकों में लौटते मौसम से खड़ी फसल बर्बाद हो गई। पूरे उत्तराखंड में अगस्त के आखिरी सप्ताह में बारिश का जबर्दस्त कहर दिखा। उत्तर प्रदेश में भारी और एकाएक बारिश से अक्तूबर के दूसरे हफ्ते में इटावा के पास बांध टूटने से सैकड़ों गांवों में पानी घुस गया। इसी तरह आजमगढ़ जिले में कैंची बांध भी भारी बारिश के दबाव से टूट गया और गहरी नींद में सोए सैकड़ों लोगों के घर डूबने लगे। आंबेडकर नगर और बाराबंकी में सरयू नदी से हजारों लोगों के आशियाने तबाह हो गए। यही हाल दर्जनों जिले में था। मध्यप्रदेश में बाणसागर की दो नहरें टूट गईं। इसी तरह दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में सितंबर के आखिरी हफ्ते की बारिश ने सबको हैरान कर दिया। पूरे देश में इस बारिश ने अपना अलग ही रंग दिखाया। बंगलुरु में बारिश की तबाही ने नब्बे साल का रिकार्ड तोड़ दिया। पड़ोसी नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश के हालात भी हम से अच्छे नहीं रहे।

मौसम के ऐसे परिवर्तन के लिए दूसरे ज्ञात तत्व भी जिम्मेदार हैं, जिनमें जंगलों का अंधाधुंध दोहन, पहाड़ों को गिट्टियों में बदलना, नदियों से अंधाधुंध रेत निकालना, जीवाश्म ईंधन- कोयला, पेट्रोल, डीजल, मिट्टी के तेल के बेहिसाब उपयोग से वायुमंडल को प्रदूषित करना और तापमान बढ़ाने वाली गैसों का अंधाधुंध उत्सर्जन, सबको पता है। मगर कम सुर्खियों और चर्चाओं में रहे 'क्लाउड सीडिंग' और दूसरी जलवायु नियंत्रण तकनीकों के प्रभावों और परिणामों पर भी गंभीर वैज्ञानिक मंथन करना होगा। कृत्रिम बारिश, बर्फबारी नियंत्रण, तापमान नियंत्रण के प्रयासों के परिणामों को भी जानना होगा। वायुमंडल का तापमान बढ़ाने के लिए पहले ही औद्योगीकरण और शहरीकरण काफी हद तक जिम्मेदार हैं, जिससे ग्रीन हाउस गैसों का संतुलन प्रभावित हो गया है। वर्ल्ड मेट्रोलाजिकल आर्गनाइजेशन की एक रिपोर्ट बताती है कि दुनिया भर के छप्पन देश 'क्लाउड सीडिंग' का प्रयोग कर रहे हैं, मगर फायदे-नुकसान पर चुप्पी साधे हुए हैं। इस बारे में यदा-कदा ही कुछ सामने आता है, पर दावे के साथ कोई कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं है कि ऐसे प्रयोग प्रकृति के लिए फायदेमंद हैं या नुकसानदेह! अपने-अपने तर्क जरूर देकर खुद ही तसल्ली कर लेते हैं। मगर हाल ही में जिस तरह के प्रकृति के प्रकोप एकाएक सामने आए हैं, उनकी वजहों को ढूंढ़ना ही होगा।

ऐसा क्यों हो रहा है, इसके पीछे कौन से वैज्ञानिक प्रयोग हैं या प्राकृतिक वजहें ही हैं, जिस पर ज्यादा चर्चाएं या बैठकें नहीं हुईं। भले यह मानने का कोई आधार नहीं है, लेकिन क्या पड़ोस में 'क्लाउड सीडिंग' के जरिए की गई रासायनिक क्रियाओं के दुष्परिणामों का असर तो नहीं? हो सकता है, देर-सबेर सच सामने आए, लेकिन जिस तरीके से मौसम को नियंत्रित करने की कोशिशों के दौरान पास-पड़ोस में असामन्य परिवर्तन या प्रभाव दिख रहा है उसका जवाब तो जरूरी है। क्या 'क्लाउड सीडिंग' के दौरान बादलों पर सिल्वर आयोडाइड और दूसरे रसायनों के छिड़काव और प्रयोगों से कोई रासायनिक क्रिया हुई, जो वायुमंडल में ही एक पाकेट बन कर आसमान में अदृश्य गैसों के रूप में इकट्ठी होती रही, जिसका हमें पता ही नहीं चला? ये अदृश्य 'गैस पाकेट' मौसमी हवाओं के रुख के साथ चल पड़े और लगातार चलते-चलते प्राकृतिक क्रियाओं के सामने अपना असर खोते गए, जिससे रासायनिक क्रियाओं से बनी सघनता और जटिलता ढीली पड़ने लगी। जहां-जहां ऐसे पाकेट बेहद कमजोर हुए, वहां एकाएक और तेज बारिश के रूप में फूट पड़े! यह केवल कयास या शंकाएं हैं, लेकिन आधारहीन नहीं हैं।

जलवायु नियंत्रण को लेकर एक अलग तरह की चिंता भी दिख रही है। क्या भविष्य में इसका दुरुपयोग सत्ता की खातिर युद्ध की विभीषिका के रूप में भी किया जा सकता है? दुश्मन देश की निगाहें जिस देश या सत्ता को अस्थिर करने पर हों, वहां पर ऐसे नियंत्रणों से बेतरतीब तबाही करके भी एक तरह से विजय हासिल की जा सकती है। अगर ऐसा हुआ और जिसको लेकर जरूर कभी-कभार चिंताएं झलकनीं शुरू हो गईं हैं, तो यह अलग ही तरह के युद्ध का भयानक दौर होगा। इसका प्रभावित क्षेत्र के आम जनजीवन पर असर तो पड़ेगा ही, प्रकृति के साथ भी बहुत बड़ी बेरहमी होगी, जिसकी भरपाई लगभग नामुमकिन-सी होगी।

बेशक, अत्यधिक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में तेजी से जलवायु परिवर्तन हो रहा है, जिसका वैश्विक तापमान पर सीधा असर पड़ा है। वहीं 'क्लाउड सीडिंग' या सर्दी, गर्मी, बारिश, बर्फ पर ऐसे गैर-प्राकृतिक तरीकों से नियंत्रण और मनमाफिक क्रियाकलापों से जलवायु चक्र भटकता, टूटता और प्रभावित होता है। यह भी गैर-प्राकृतिक प्रयोगों का दुष्परिणाम है। प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के बेहिसाब दोहन से पहले ही प्रकृति का संतुलन बिगड़ चुका है, ऊपर से जलवायु नियंत्रण के लिए रासायनिक प्रयोगों ने आग में घी का काम तो नहीं कर दिया? आखिर क्यों जलवायु परिवर्तन को लेकर ढिंढोरा पीटने वाले दुनिया भर के चिंतक, राजनेता, शासक और शोध संस्थान चुप हैं या जानबूझ कर अनजान बने हुए हैं? कहीं इस चुप्पी या अनदेखी के पीछे दुनिया को अपनी समृद्धि के रुतबे से काबू करने की कोशिश तो नहीं? अगर ऐसा हुआ तो एक दिन प्रकृति जलवायु से अपना नियंत्रण खोकर उन हाथों की कठपुतली बन जाएगी, जो ताकतवर बन कर दुनिया को अपनी उंगली पर नचाने का ख्वाब पाले हुए हैं। भूलकर भी ये दिन न देखना पड़े, वरना समूची मानवता और प्रकृति के लिए इससे बुरा कुछ नहीं हो सकता।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:28-10-22

अभद्र बोल पर वार

संपादकीय

अभद्र भाषा या 'हेट स्पीच' के लिए समाजवादी पार्टी के नेता आजम खान को दोषी ठहराए जाने का भारतीय राजनीति में एक व्यापक सांकेतिक महत्व है। इसका एक पहलू राजनीतिक है, तो दूसरा सामाजिक है, जिस पर विस्तार से चर्चा होनी चाहिए। खैर, आजम खान को तीन साल की कैद के साथ ही, 2,000 रुपये जुर्माने की भी सजा सुनाई गई है। आजम खान ने मुख्यमंत्री व रामपुर के तत्कालीन जिलाधिकारी के खिलाफ हेट स्पीच या भड़काऊ बयान दिया था और अप्रैल 2019 में उनके खिलाफ मामला दर्ज किया गया था। अखिलेश यादव के नेतृत्व वाली पार्टी के एक वरिष्ठ नेता आजम खान इन दिनों उत्तर प्रदेश के रामपुर से विधायक हैं। सजा मिलने के बाद उनकी विधानसभा सदस्यता जा सकती है। अगर ऐसा हुआ, तो यह दूसरे नेताओं के लिए सबक होगा। दूसरी ओर, अगर लोग यह मानेंगे कि राजनीतिक द्वेष की वजह से आजम खान को सजा सुनाई गई है, तो इसका बुरा असर भी हो सकता है। फैसला भले अदालत ने किया है, लेकिन सरकार के लिए यह जरूरी है कि वह किसी भी तरह से राजनीतिक विद्वेष दर्शाती हुई न दिखे।

आजम खान मुश्किल दौर से गुजर रहे हैं। जमीन हड़पने के एक मामले में वह महीनों जेल में रहे हैं और इस मामले में उन्हें तत्काल तो जेल नहीं जाना पडेगा, वह ऊपरी अदालत में अपील कर सकते हैं। वैसे भी ऐसे मामलों में किसी नेता को सजा देना आसान काम नहीं है। देश में बड़ी संख्या में ऐसे नेता हैं, जिन्होंने भड़काऊ बयान दिए हैं, पर आराम से सभाओं में या लोगों के बीच घूम रहे हैं। घृणा फैलाने वाले बयान व भाषण तो देश में बहुत हैं, लेकिन सजा मिलने के उदाहरण बहुत कम हैं। घृणा की अपनी अलग राजनीति है, सत्ता या सरकार बदलने के साथ ही अपराध के प्रति नजरिया बदल जाता है। विपक्ष में रहते बहुत तीखा बोलने वाले नेता भी सत्ता में आकर अपेक्षाकृत सुधर जाते हैं। कानून की राह भी बहुत उलझी हुई है, अनेक नेता पहले ही अदालतों से राहत या जमानत लेकर बैठे रहते हैं।

दरअसल, बहुत हद तक ऐसे मामलों में सरकार की मर्जी भी मायने रखती है। आजम खान की ही बात करें, तो उनके खिलाफ कई मामले चल रहे हैं। कभी वह उत्तर प्रदेश की सत्ता में बड़े कद्दावर नेता थे। तमाम परेशानियों के बावजूद पिछले चुनाव में उन्होंने साबित किया कि आज भी उनका जमीनी आधार है। अब जरूरी है कि वह अगर खुद को निर्दोष मानते हैं, तो कानूनी लड़ाई पुरजोर तरीके से लड़ें।

जहां तक कानून और संविधान की बात है, तो उससे कोई समझौता किसी भी सरकार को नहीं करना चाहिए। कानून में पर्याप्त प्रावधान हैं कि कोई भी भड़काऊ इंसान छुट्टा नहीं घूम सकता, लेकिन आज यह बात किसी से छिपी नहीं कि सभी दलों में ऐसे लोग भरे पड़े हैं, जिनके नफरती बोल देश के बुनियादी लोकतांत्रिक ढांचे को नुकसान पहुंचा रहे हैं। अपनी बात रखने का एक सलीका है, जिसे लोग भूलते जा रहे हैं। यह भी एक पहलू है कि समाज में अपशब्द ही लोगों का ज्यादा ध्यान खींचने लगे हैं। अपशब्द बोलने वालों को सजा मिलने लगेगी, तभी यह अनुचित आदत छूटेगी। अब तो सोशल मीडिया का भी एक विशाल क्षेत्र है, जहां भाषा और भाव का संयम दिनोंदिन जरूरी होता जा रहा है। देश की अदालतों को नफरती या भड़काऊ बोल के मामले में पूरी तेजी के साथ सुनवाई पूरी करनी चाहिए, ताकि समाज केवल सकारात्मक राह पर ही आगे बढ़े।

Date:28-10-22

कहीं युवा तो कहीं अनुभव का जोर

विजय त्रिवेदी, (वरिष्ठ पत्रकार)

कहा जाता है कि दुनिया बदलनी हो, तो नौजवानों पर भरोसा करना चाहिए और नौजवान अगर बुजुर्गों के अनुभव को अपने साथ जोड़ लें, तो फिर बेहतरी का रास्ता निश्चित हो जाता है, लेकिन ये दोनों ही शर्तें पूरी होना आसान नहीं है। अव्वल तो समाज में युवाओं पर भरोसा करना और उन्हें नेतृत्व का मौका देना और जब युवाओं को नेतृत्व मिल जाए, तो बुजुर्गों को भी अपने साथ जोड़कर रखना आसान नहीं है। वैसे यह हिन्दुस्तानी समाज की ताकत और सच्चाई भी रही है, जब संयुक्त परिवारों में एक साथ तीन-तीन पीढ़ियां चला करती थीं, तब उनकी ताकत उनके व्यापार, उद्योग-धंधों और परिवारों को भी आगे ले जाने में मददगार होती थी।

इस सप्ताह दो महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएं हुई हैं, उधर, ब्रिटेन में 42 साल के ऋषि सुनक प्रधानमंत्री चुने गए, तो इधर, भारत में देश की सबसे पुरानी पार्टी कांग्रेस के 137 साल के इतिहास में मल्लिकार्जुन खड़गे छठे निर्वाचित अध्यक्ष चुने गए। 80 साल के खड़गे ने चुने जाने के बाद सबसे पहले कांग्रेस में जवां खून को शामिल करने का ऐलान किया और कहा कि पचास फीसदी हिस्सेदारी युवाओं की रहेगी। आलोचक कह सकते हैं कि 80 साल के बुजुर्ग खड़गे कांग्रेस में क्या नया जोश भर पाएंगे, लेकिन यह भी सच है कि पचास फीसदी युवाओं को अगर जगह मिली, तो यह बदलाव कांग्रेस पार्टी और राजनीति के लिए बेहतर साबित हो सकता है। सवाल तो यह भी किया जा सकता है कि जब राहुल गांधी साल 2004 में सांसद बनकर राजनीति में सक्रिय हुए थे, लेकिन उन्होंने पार्टी को चुनावी राजनीति के तौर पर तो निराश ही किया और उनके कार्यकाल में पार्टी लोकसभा और विधानसभाओं के करीब पचास चुनावों में से चालीस हार गई। उनके पिता राजीव गांधी के जमाने में 415 सांसदों वाली पार्टी का आंकड़ा 54 तक पहुंच गया। राजीव गांधी भी करीब इसी उम्र में प्रधानमंत्री बन गए थे, मगर राहुल गांधी के समर्थकों की इस बात को खारिज नहीं किया जा सकता कि उन्होंने हिन्दुस्तान में एक नई तरह की राजनीति की शुरुआत की। कांग्रेस की युवा इकाइयों - युवा कांग्रेस और एनएसयूआई में लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए संगठन चुनाव राहुल गांधी ने ही करवाए और आज 25 साल बाद कांग्रेस में गैर-गांधी परिवार का अध्यक्ष बना है, तो उसका एक बड़ा कारण राहुल गांधी की जिद ही है, जिन्होंने तय किया कि न तो वह खुद दोबारा अध्यक्ष बनेंगे और न ही गांधी परिवार के किसी सदस्य को अध्यक्ष बनने देंगे।

दुनिया के युवा देशों में से एक हिन्दुस्तान की कुल आबादी में पचास फीसदी 25 साल से कम उम्र वाले हैं और 35 साल से कम उम्र वाले करीब 65 फीसदी हैं। साल 2020 में एक भारतीय की औसत उम्र 29 साल थी, जबकि चीन में यह 37 साल और जापान में 48 साल। साल 2019 के लोकसभा चुनावों में करीब 8 करोड़ बीस लाख वोटर ऐसे थे, जिन्होंने पहली बार वोट के अधिकार का इस्तेमाल किया था और शायद इसी का नतीजा रहा कि मौजूदा लोकसभा में 64 सांसदों की उम्र 40 साल से कम है और 41 से 55 साल के उम्र के 221 सांसद चुने गए यानी हिन्दुस्तान के वोटर ने अपने नौजवान नेताओं पर भी उतना ही भरोसा जताया, जितना अनुभवी नेताओं पर। इसका असर केंद्र सरकार और मौजूदा भारतीय राजनीति पर भी साफ-साफ दिखाई देता है, जहां मोदी सरकार में युवा और अनुभवी, दोनों का बेहतर योग है।

अनुभवी प्रधानमंत्री मोदी 70 साल के हैं, तो उनकी सरकार में 14 मंत्रियों की उम्र 50 साल से कम है। कुल 36 मंत्री 60 साल से कम उम्र के हैं। सरकार में शामिल कूच बिहार के नीतीश प्रामाणिक तो सिर्फ 35 साल के हैं। मौटे तौर पर मोदी

और भाजपा ने 75 साल की उम्र सीमा सक्रिय राजनीति के लिए तय कर दी है, जिसकी वजह से कई मंत्रियों को सरकार से बाहर होना पड़ा है।

बात सिर्फ केंद्र की राजनीति की ही नहीं है। कई राज्यों में सरकार की बागडोर युवा चेहरों के हाथ में है। देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ 50 साल के तो पंजाब सूबे की जिम्मेदारी संभालने वाले भगवंत मान 48 साल के हैं। अरविंद केजरीवाल जब पहली बार मुख्यमंत्री बने थे, तब उनकी उम्र 45 साल थी। अखिलेश यादव 2009 में सिर्फ 38 की उम्र में मुख्यमंत्री बन गए थे।

देश में सबसे कम उम्र का मुख्यमंत्री बनने का रिकॉर्ड तो 1967 में ही पुडुचेरी में एम ओ एच फारुक ने तोड़ दिया था, जब उन्होंने 29 साल की उम्र में मुख्यमंत्री पद की शपथ ली थी। झारखंड में जब शिबू सोरेन ने अपने बेटे हेमंत सोरेन को 2013 में झारखंड मुक्ति मोर्चा की जिम्मेदारी सौंपी, तब हेमंत सोरेन की उम्र 28 साल थी। असम में 1985 में असम गण परिषद के प्रफुल्ल कुमार महंत 34 साल की उम्र में मुख्यमंत्री बने। आज के दिग्गज एनसीपी नेता शरद पवार 1978 में 38 साल की उम्र में पहली बार मुख्यमंत्री बने। प्रकाश सिंह बादल 1970 में 43 साल की उम्र में पहली बार मुख्यमंत्री बने थे। उमर अब्दुल्ला 2009 में 38 की उम्र में मुख्यमंत्री बने। देश में पचास साल से कम उम्र के छह मुख्यमंत्रियों में से चार भाजपा से हैं। भाजपा ने कई बुजुर्ग नेताओं को मार्गदर्शक मंडल में ही भेज दिया, लेकिन कांग्रेस अब भी उनके साथ चल रही है और यहां कम्युनिस्ट पार्टी की हालत भी कमोबेश चीन जैसी ही है, चीन में बुजुर्ग नेताओं का वर्चस्व कायम है।

यहां मसला सिर्फ नौजवानों के हाथों में सत्ता सौंपने या सिर्फ बुजुर्गों पर भरोसा करने का नहीं है। बुजुर्गों के अनुभव और युवाओं की ऊर्जा दोनों के तालमेल से बेहतर नतीजों की उम्मीद की जा सकती है। अक्सर देखा जाता है कि हम एक तरफ ही झुकने लगते हैं, जिससे नुकसान की आशंका बनी रहती है। समझने की जरूरत है कि बुजुर्गों और युवा पीढ़ी के बीच न तो कोई मुकाबला है और न ही दुश्मनी। दोनों साथ मिल जाएं, तो उनकी ताकत एक से एक जोड़कर ग्यारह हो जाती है, शायद यह बात कांग्रेस अध्यक्ष खड़गे ने बेहतर समझ ली है, इस रास्ते पर सब लोग आगे बढ़ें, तो भारत मजबूत भी होगा और तेजी से आगे बढ़ेगा।